● कविताएं...

जरूरत...

एक कदम मेरा भी
मेरा मन कहता है
चलूं
उन अंधेरी,
बदनाम गलियों में
जहां छटपटा रहा है
मेरी बहनों का जीवन
जिन्होंने ओढ़ा हुआ है
तार-तार इज्जत का पल्ला
जिन्हें रौंदा गया है
बार-बार
उन अंधेरी,
बदनाम गलियों में
खिली
मासूम कलियों को
बटोर लाऊं मैं
खिलने के लिए उन्हें भी
साफ हवा खाद पानी की
जरूरत है
कि उन्हें भी एक
मुक्त आंगन की जरूरत है।

■ *अनिता भारती*

कुली...

रेलगाड़ी के रुकते ही
खड़े हो जाते हैं कुली
मानो! कर रहे हों अभिवादन
यात्रियों का।
सभी कुली आजमाते हैं –
अपना-अपना भाग्य।
कोई, अपना सामान उठवाते हैं
तो कोई स्वयं ही पीठ पर लाद
चल देते हैं।
कुली दूर तक पीछा करते हैं,
उन यात्रियों का
और हर क्षण घटाते है
अपनी मजदूरी की दर
बाबू! दस के बदले पांच दे देना
पांच न सही दो दे देना!
पर, यात्री नहीं देखते मुड़कर
एक बार भी उन कुलियों को।
कुली कुछ दूर आगे बढ़ते हैं
वे मन से हारते नहीं हैं,
रहते हैं चुनौती के साथ
पुनः अगली ट्रेन
की प्रतीक्षा करते हुए।

■ *उत्तिमा केशरी*

● कहानी/–धर्मवीर भारती

अमृत की मृत्यु

गतांग से आगे...

पर देवदासी! तुम्हारे धर्म में तो मनुष्य देवता का साधन बन जाता है, देवता की पूजा की सामग्री बन जाता है फिर तुम मनुष्यत्व पर इतना गर्व कैसे कर सकती हो?'

'तुमने हमें गलत समझा है आचार्य! हमारे लिए साध्य है मनुष्य, प्रेम मनुष्यत्व की साधना है और राधाकृष्ण उस प्रेम के विकास के अवलम्ब मात्र!'

'प्रेम' भव्य हँसे –'प्रेम की साधना!! कितना बड़ा भ्रम है तुम्हें देवि? तुम समझती हो प्रेम तुम्हें सत्य के निकट ले जायेगा?'

'हाँ आचार्य इसी विश्वास पर मैं जीवित हूँ। प्रेम को समझकर जब मनुष्य उस पूर्ण सत्ता को स्नेह समर्पण कर देता है, उसी समय विश्वरूप भगवान उसके हृदय में बस जाते हैं। उस समय प्रत्येक प्रेमी कृष्ण बन जाता है, प्रत्येक प्रेमिका राधा बन जाती है और प्रत्येक कुंज में गूँज उठती है मनमोहन की मादक मुरली – यही प्रेम की साधना है, यही आत्मसमर्पण का पथ?'

'आत्मसमर्पण!' भव्य फिर हँस पड़े- 'ठीक है – किन्तु प्रेम का विचार ही मिथ्या है अंजलि! बिना दो के प्रेम हो ही नहीं सकता। और जिस समय एक मनुष्य अपना सब कुछ समर्पित कर देता है उस समय उसका अपना क्या रह जाता है? कुछ नहीं। केवल अपनी लालसाओं की समाधि पर, अपनी इच्छाओं के श्मशान में सिसक-सिसककर जो मृत्युगीत वह गाता है, उसी को समझता है प्रेम! चिता के धूम्र से मलिन अन्तरिक्ष उसे देखकर व्यंग्य से हँसता है। श्मशान के प्रेत अट्टहास करते हैं। और पागल प्रेमी? वह समझता है संसार उसका स्वागत कर रहा है। यह है प्रेम! शव का आलिंगन! चिता की राख में दबे हुए अंगारों को ही तो प्रेम कहते हैं न? इसी प्रेम के सम्बल को लेकर तुम जीवन को जीतने चलती हो बिना सत्ता के, बिना स्थिति के, तुम जीवन को नहीं जीत सकतीं और प्रेम, आत्मसमर्पण, सत्ता को चूर-चूर कर डालता है।'

'मुझे जीवन के जीतने की कामना ही नहीं आचार्य। हम जीवन को केवल प्यार करते हैं और जीवन स्वयं हमारे सामने हार जाता है?'

'जीवन हार जाता है या तुम्हें भ्रम में डाल देता है देवि? वासवदत्ता की कथा सुनी है न? जीवन भर प्रेम करने के पश्चात भी उसे मिली केवल अतृप्ति, असन्तोष और अन्त में उसे झुकना पड़ा बुद्ध के वैराग्य, बुद्ध की करुणा के सामने! प्रेम के सामने नहीं। आओ बुद्ध की शरण अंजलि । तुम्हारी सभी कामनाओं की सिद्धि होगी। तुम निर्वाण पाओगी।'

'रहने दो भव्य! मुझे निर्वाण की आवश्यकता नहीं। हमें बार-बार इसी संसार में आना है। क्यों न इसी को स्वर्ग बना लें। और कामनाओं की सिद्धि से क्या लाभ है। भव्य! कामनाओं की सिद्धि तो जीवन का अन्त है। हमारे तो जीवन का कभी अन्त नहीं होता। क्योंकि हमारी कामनाओं की कभी सिद्धि ही नहीं होती। उनकी कभी सिद्धि ही नहीं होती क्योंकि हमारी कामनाएँ स्वयं सिद्धि हैं। हमारा जीवन उल्लासमय है भव्य, जब तक हम जीवित रहते हैं हँसते – जब मरते हैं तो...।'

'ठहरो देवि! वासवदत्ता भी यही कहती थीं...।'

'लेकिन आचार्य, मैं वासवदत्ता की तरह नहीं हूं।'

'मृत्यु सबको वही बना देती है देवि!'

'वासवदत्ता मृत्यु के उद्यान के काँटों से डर गयी थी, उसने वहाँ की छाया की शीतलता का अनुभव नहीं किया था। किन्तु अब देर हो रही है आचार्य; तो आपका उद्यान हम लोगों को न मिलेगा।'

उसके बाद एक जोर का कोलाहाल हुआ और उसमें अंजलि के स्वर छिप गये। उसने फिर अपने प्रयोग की ओर देखा। पात्र से सहसा लहराता हुआ धुआँ उठा और एक उबाल खाकर द्रव श्वेत हो गया। और वह चीख उठा– 'अमृत! मिल गया।

यह मनुष्य की जीत है?' सहसा वातायन से आवाज आयी – 'अब मृत्यु निकट है, जीवन की कोई आशा नहीं?' भव्य चौंक पड़ा 'कौन कहता है मृत्यु निकट है। अब तो मनुष्य अमर बनेगा'...

'मुख्य उद्यान तो नहीं, वह सामने वाला उद्यान तुम उपयोग में ला सकती हो!'

'धन्यवाद आचार्य?' अंजलि उठी और चली गयी।

'इतना रूप और इतनी बुद्धि!' – भव्य ने मन में कहा।

'इतना तेज, इतना तारुण्य और यह विरक्ति! आश्चर्य है!' अंजलि ने सोचा।

सन्ध्या हो गयी थी। पूर्णिमा की सफेद चाँदनी वातायन के मार्ग से झाँक कर हँस रही थी। भव्य एकाग्रचित्त से अग्निपात्र के तापमान को संयत रखने में व्यस्त था। बाहर दूर पर सामने के उद्यान में उत्सव हो रहा था। रसाल वृक्ष में झूला पड़ा था और लड़कियाँ गीत गा रही थीं। सहसा उस कोलाहल को चीरकर एक मीठा पर तीव्र स्वर गूँज उठा। भव्य का ध्यान भंग हो गया। यह तो अंजलि का स्वर है। वह एक गीत गा रही थी- राधा का मरण – गीत – 'ओ निष्ठुर मनमोहन! तुम्हारी राधा मरणसेज पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। क्या अब भी तुम न आओगे। एक बार आओ घनश्याम! प्यार करने के लिए नहीं। केवल यह बतलाने के लिए कि प्यार झूठा है। राधा! मेरे प्यार को भूल जाओ?'

उसके बाद एक जोर का कोलाहाल हुआ और उसमें अंजलि के स्वर छिप गये। उसने फिर अपने प्रयोग की ओर देखा। पात्र से सहसा लहराता हुआ धुआँ उठा और एक उबाल खाकर द्रव श्वेत हो गया। और वह चीख उठा- 'अमृत! मिल गया। यह मनुष्य की जीत है?'

सहसा वातायन से आवाज आयी – 'अब मृत्यु निकट है, जीवन की कोई आशा नहीं?'

भव्य चौंक पड़ा 'कौन कहता है मृत्यु निकट है। अब तो मनुष्य अमर बनेगा।'

लेकिन बाहर से फिर किसी ने कहा- 'मृत्यु अब निकट है!'

भव्य ने बाहर झाँककर देखा – नीचे कुछ लोग बातें करते हुए जा रहे थे। एक ने कहा – 'लेकिन हुआ क्या था?'

'जब अंजलि गा-गाकर देवता के लिए फूल चुन रही थी तो उसे साँप ने डस लिया।'

भव्य स्तम्भित हो गया। अंजलि को साँप ने डस लिया। आश्चर्य है, अभी तो वह गा रही थी! वह सुनो- वह तो अब भी गा रही है- 'निष्ठुर! तुम्हारी राधा मरणसेज पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। क्या तुम अब भी न आओगे? एक बार फिर आओ निष्ठुर! प्रेम करने के लिए नहीं। यह बतलाने के लिए कि प्रेम झूठा है...'

भव्य ने ध्यान से देखा। उद्यान शून्य था। तो क्या सचमुच अंजलि मरणसेज पर है। क्या मृत्यु के द्वार पर खड़े होकर अंजलि ने यह गीत गाया है जिसकी प्रतिध्वनि अनजाने मेरे हृदय में गूंज रही है। वह विकल हो गया। नहीं, अंजलि को खींच ही लाना होगा मौत के मुँह से। उसने अमृत का पात्र लिया और चल पड़ा मन्दिर की ओर! मुख्य कक्ष में, दासियों से घिरी हुई अंजलि अचेत थी। उसके पहुँचते ही दासियाँ हट गयीं। अकस्मात अंजलि ने आँखें खोल दीं। वह काँप रही थी, प्रयत्न कर बोली–

'ओह! वासवदत्ता की मरणसेज पर अमिताभ आये हैं?'

'आज तुम्हें जीवन की असारता मालूम हो गयी न? इसी को भूलकर वासवदत्ता ने प्रेम...'

'ठहरो भव्य?' वह बात काटकर बोली- 'वासवदत्ता ने प्रेम किया था मगर मरते समय बुद्ध की कृतज्ञता मोल ली, यह अच्छा नहीं किया। और बुद्ध! बुद्ध ने उसके प्यार का तिरस्कार कर मानवता की भावनाओं का अपमान किया था और अन्त समय पर प्रेम के शव पर करुणा और दया का कफन उढ़ाकर उन्होंने जले पर नमक छिड़का था। यदि वासवदत्ता का प्रेम बुद्ध ने स्वीकार कर लिया होता तो वासवदत्ता की वह अवस्था ही क्यों होती। मुझसे तुम उसकी आशा न करो भव्य! मैं मनुष्य की भाँति जीवित रही हूँ; मनुष्य की भाँति मरूँगी। मुझे जीने का उल्लास रहा है; मरने का पश्चात्ताप न होगा!'

भव्य चकित रह गये। जिस मृत्यु से वे जीवन भर डरते रहे, यह देवदासी उसे किस निर्भयता से स्वीकार रही है। जिस जीवन के पीछे वे इतनी साधना करते रहे उसे किस शान से इसने ठुकरा दिया। कौन-सी शक्ति है इस आत्मविश्वास के पीछे?

अंजलि ने फिर आँखें खोलीं और अपना शीतल हाथ भव्य के हाथ पर रख दिया। भव्य सिहर गये पर उन्होंने वह हाथ हटाया नहीं! उन्होंने बड़े ध्यान से देखा अंजलि के मुख की ओर। उसके ओठ जहर के कारण नीले पड़ते जा रहे थे। क्या मृत्यु अंजलि को छीन ले जायेगी? भव्य व्याकुल हो उठे।

'अंजलि! जाने दो!' उन्होंने कहा – 'करुणा न सही, सहानुभूति न सही, क्या प्रेम प्रार्थना पर भी तुम अमृत की दो बूँदें स्वीकार न करोगी?'

अंजलि ने हाथ बढ़ाया और अमृत का पात्र लेकर देवता की मूर्ति के चरणों पर डाल दिया। वे अमर हो गये।

'अमृत देवताओं के लिए है, मनुष्य के लिए नहीं प्रियतम! तुम मृत्यु से डरते हो? मृत्यु जीवन की प्रेरणा है, विरह प्रेम की उत्तेजना है, दुःख सुख का विधाता है भव्य! जानते हो, कुमुदिनी प्रातः काल इसलिए नहीं कुम्हला जाती कि चन्द्र उससे दूर हो जाता है, चाँद की किरणें तो उसके हृदय में खेलती ही रहती हैं; वह मुरझाती है इसलिए कि साँझ को फिर प्रियतम का सुखद स्पर्श उसे प्राप्त हो। यही प्रेम की साधना है । जन्म-जन्मान्तर तक यही क्रीड़ा चलती रहती है भव्य?'

सहसा वह चुप हो गयी और उसने अपना सिर भव्य के कन्धों पर टेक दिया। भव्य ने धीरे से पुकारा, 'अंजलि!' पर वह मूक थी। वह काँप उठा आशंका से! उसने ध्यान से देखा। कुमुदिनी मुरझा गयी थी। वह पागल सा हो उठा अंजलि का शव शान्त पड़ा था और देवदासियों की अर्द्ध-मौन सिसकियाँ वातावरण में तड़प रही थीं...। **-समाप्त**

● शायरी...

आज भड़की रग-ए-वहशत तिरे दीवानों की
क़िस्मतें जागने वाली हैं बयाबानों की
फिर घटाओं में है नक़्क़ारा-ए-वहशत की सदा
टोलियां बंध के चलीं दश्त को दीवानों की

◆◆◆

आज क्या सूझ रही है तिरे दीवानों को
धज्जियां ढूंढते फिरते हैं गरेबानों की

◆◆◆

रूह-ए-मजनूं अभी बेताब है सहराओं में
ख़ाक बे-वजह नहीं उड़ती बयाबानों की

◆◆◆

उस ने 'एहसान' कुछ इस नाज़ से मुड़ कर देखा
दिल में तस्वीर उतर आई परी-ख़ानों की

-एहसान दानिश

◆◆◆

तुम से आबाद है बातों की तिलिस्मी दुनिया
ये तुम्हारी भी ज़रूरत है चलो तुम बोलो
हमा-तन-गोश ज़माना है अभी मौक़ा है
तुम को हासिल ये सुहूलत है चलो तुम बोलो

-नुसरत मेहदी

● फूट फूट के ख़ल्वत में रोइए..

फिर क्या जो फूट फूट के ख़ल्वत
में रोइए
यकसर जहान ही को न जब तक डुबोइए
दीवाना-वार नाचिये हंसिए गुलों के साथ
कांटे अगर मिलें तो जिगर में चुभोइए
आंसू जहां भी जिस की भी आंखों में देखिए
मोती समझ के रिश्ता-ए-जां में पिरोइए
हर सुब्ह इक ज़जीरा-ए-नौ की तलाश में
साहिल से दूर शोरिश-ए-तूफ़ां के होइए

-उर्फी आफ़ाक़ी